



Original Article

अलका सरावगी के उपन्यासों में चित्रित विविध विमर्श

प्रा. डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद¹, जयश्री पांडुरंग चव्हाण²

¹शोध निर्देशक एवं हिंदी विभागाध्यक्षा, डी. पी. भोसले कॉलेज, कोरेगाव

²शोध छात्रा, शिवाजी विद्यापीठ कोल्हापुर

Manuscript ID:

IJAAR-C130315

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 68 - 73

Submitted: 17 Jan. 2026

Revised: 24 Jan. 2026

Accepted: 10 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

प्रा. डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22785420

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22785420>



Creative Commons



सार:

समकालीन हिंदी साहित्य में अलका सरावगी का विशिष्ट स्थान है। उनके उपन्यास उत्तर-आधुनिक सामाजिक संरचना, शहरी मध्यवर्गीय जीवन, स्त्री-अस्मिता, ऐतिहासिक चेतना, प्रवासी अनुभव तथा पूँजीवादी व्यवस्था से उपजी जटिलताओं का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में उनके प्रमुख उपन्यासों- कलिकथा: वाया बाइपास, शेष कादंबरी, कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए -के आधार पर चित्रित सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं लैंगिक समस्याओं, विस्थापन की समस्या का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी के उपन्यास भारतीय समाज में संक्रमणकालीन परिस्थितियों का सजीव दस्तावेज हैं, जहाँ परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व, बाजारवाद का प्रभाव, स्त्री-स्वतंत्रता का संघर्ष तथा मानवीय संबंधों का विघटन प्रमुख समस्याओं के रूप में उभरता है।

मुख्य शब्द: स्त्री-विमर्श, उत्तर-आधुनिकता, मध्यवर्गीय जीवन, बाजारवाद, सांस्कृतिक संकट, विस्थापन

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

प्रा. डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद, जयश्री पांडुरंग चव्हाण. (2026). अलका सरावगी के उपन्यासों में चित्रित विविध विमर्श. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 68 - 73. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22785420>

प्रस्तावना:

21वीं सदी के प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार अलका सरावगी का जन्म स्वतंत्र भारत के बंगाल प्रांत के कोलकाता शहर में एक मध्यम वर्गीय मारवाड़ी व्यापारी परिवार में नवंबर सन 1960 को हुआ था। इसमें कोई दो राय नहीं है कि अलका

जी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास से ही इस बात को प्रमाणित कर दिया था। 'कलिकथा: वाया बाइपास' उपन्यास को साहित्य अकादमी और श्रीकांत वर्मा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद आए उनके दूसरे उपन्यास 'शेष



कादंबरी' को भी बिड़ला फाउंडेशन का बिहारी पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन 1998 से लेकर आज तक 20 वर्षों में अलकाजी ने दो कहानी संग्रह, आठ उपन्यास और अन्य लेख लिखे हैं। अपनी विशिष्ट लिखने की वजह से अलका जी ने अपनी एक अलग पहचान हिंदी साहित्य में बना ली है। इसके अलावा अलका जी के व्यक्तित्व में गांधीवादी विचारों का प्रभाव, ईश्वर के प्रति आस्था, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति की आकांक्षा, सामाजिक दायित्व आदि और भी गुण मिलते हैं, जिनका परिचय उनकी समग्र रचनाओं में मिलता है। अलका जी में विविध प्रकार के गुण होकर भी वे अपने जीवन को साधारण और सार्वजनिक मानती है। उपन्यास हमें अपने आसपास की वास्तविकता से परिचय करता है। अलका सरावगी के उपन्यास एक कथा अथवा खास विचारधारा को प्रस्तुत नहीं करते हैं बल्कि अलग-अलग कथाओं को अभिव्यक्त करते हैं। उनके सभी उपन्यासों के विषय अलग-अलग है। समाज की विभिन्न समस्याओं को उकेरने का कार्य उनके उपन्यास में दिखाई देता है। "अलका सरावगी की विशेषता यह है कि वह गंभीर से गंभीर मुद्दों को भी अत्यंत सहज भाषा में इस तरह प्रस्तुत करती है कि पाठक उन बातों से खुद को जोड़ने लगता है। उनके पात्र ऐसे होते हैं जो हमारे आसपास ही रहते हैं, जिनका संघर्ष और भावनाएं हमारी अपनी लगती है। उनकी कहानियों में संवेदना इतनी संजीव होती है कि पाठक को लगता है जैसे यह उसकी अपनी ही कहानी हो। यही उनके लेखन की शक्ति है। यह कहा जा सकता है कि अलका सरावगी का लेखन मानवीय संवेदनाओं का गहरा दस्तावेज है।

विषय विवेचन:

अलका सरावगी जी ने 'कलि- कथा: वाया बाईपास' उपन्यास में किशोर बाबू की छह पीढ़ियों के साथ सन् 1857 के

स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर सन् 2000 ई तक के युग को उपन्यास की कथा का विषय बनाया है। अलका सरावगी के इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज में होने वाले रूढ़िवादी समाज की कथा इस उपन्यास की कथावस्तु अनेक स्तर पर विद्यमान है जिनमें से मारवाड़ी समाज में स्त्रियों के घुटन भरी विवश अंधेरी जिंदगी का चित्रण अधिक यथार्थ रूप से किया है। अलका सरावगी के इस उपन्यास में रूढ़िवादी समाज की कथा ही नहीं है, इसमें भारतीय समाज के विसंगतियों का वर्णन आज भी आधुनिक परिस्थितियों के विपरीत है। किशोर बाबू स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति जागरूक तो है किंतु सामाजिक भेड़िया उन्हें पुरातनता के खोल में लौट जाने पर विवश कर देती है। किशोर बाबू एक तरफ तो यह सोचते हैं कि हमारे घर की महिलाएं कितनी भी वर्ष और परतंत्र है। सारा दिन घरों में बंद रहती है, उन्हें कहीं बाजार भी जाना होता है तो वह गर्दन तक घूंघट करके ही बाहर निकल आती है, लेकिन उनकी यह सोच तब तक बदल जाती है जब अपनी विधवा भाभी को बिना किनारे की सफेद साड़ी की जगह पर गुलाबी काट के रंग की साड़ी पहने हुए देखते हैं। भाभी को गुलाबी किनारे वाली साड़ी पहने हुए देखने के बाद उनका पुरुषार्थ जाग जाता है और वह भाभी पर चिल्लाते हैं, - "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी? उम्र बढ़ाने के साथ-साथ आदमी की अकल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यू.पी वालों की अकल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक- मटक रंग की साड़ी में पहनी है। क्या कहेंगे लोग देख कर? कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।" पुरुष सत्तात्मक समाज में एक विधवा स्त्री को अपनी इच्छा से रहने की इजाजत नहीं होती है। परंपरा के अनुसार ही उसे विधवा का जीवन जीना पड़ता है।

किशोर बाबू कोलकाता जैसे शहर में रहते हैं तो मारवाड़ी समाज के सहयोग की पिछड़ी स्थिति पर शर्म महसूस



करते हैं। अपने समाज रुढ़ियों, घूंघट प्रथा, आदि का विरोध करते हैं। अपनी बेटियों को पटाने का फैसला लेते हैं अपनी सारी लड़कियों को कॉलेज भी भेजते हैं लेकिन दो ही लड़कियां बा पास करती है और बाकी सभी की बीच में ही शादी करते हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियों को भी वह एक मर्यादा में जीना सिखाते हैं हमेशा एक सीमा में उन्हें बांधकर रखा है। किशोर बाबू का मानना है कि- "पिंजरे के पक्षी को जन्म से ही पिंजरे में रखा जाए, तो कष्ट नहीं मानता। पर एक बार खुले आकाश में छोड़कर पिंजरे में बंद कर दे, तो वह अपना खाना पीना छोड़ देता है। आखिर लड़कियों को पराए घर जाना है, घर गृहस्थी संभालती है। ज्यादा पर निकल लिए, तो मुसीबत हो जाएगी।"³

' शेष कादंबरी '२००१'राजकमल प्रशासन द्वारा प्रकाशित उपन्यास है। यह उपन्यास स्त्रियों के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। यह उपन्यास 70 वर्षीय रूबी गुप्ता उर्फ रूबी दी की कहानी है। जो अपने पूरे जीवन काल में अपनी अस्मिता और अस्तित्व की पहचान के लिए संघर्ष करते रहती है। 26 सालों से असहाय निर्बल, बेचारी औरतों, तरह-तरह की दुखियारियों की मदद के लिए ' परामर्श 'संस्था चलाती है। यह कथा फ्लैशबैक पद्धति के माध्यम से अतीत में चली जाती है। वर्तमान और अतीत की स्मृतियों के सहारे यह कहानी आगे बढ़ती है। रूबी दी वर्तमान की स्थिति को बताते हुए अनेक बार अपने बचपन की स्मृतियों में खो जाती है। रूबी दी अपनी बाल्यावस्था, वैवाहिक जीवन और वृद्धावस्था में भी अकेलेपन का शिकार होती है। आज हम समाचार पत्रों में ऐसे समाचार पढ़ते हैं कि, अपने ही घर में एक स्त्री सुरक्षित नहीं है। उसके घरवाले उसके आज दुश्मन होते नजर आ रहे हैं। इसी प्रकार से इसी उपन्यास में भी कई स्त्री पात्र ऐसी है जो अपने ही घरवालों से प्रताड़ित है। सौतेली सास, नंद, जेठानी द्वारा प्रताड़ित होने के कारण रूबी दी मनोरोगी हो जाती है। सायरा के

अपने भाई से गर्भवती होने के कारण मनोरंजन व्यापारी उसे रूबी डी के पास लेकर आता है। सायरा जैसी इस उपन्यास की सभी ता भी अपने घर वालों से प्रताड़ित है। रूबी दी समाज में प्रताड़ित महिलाओं की मदद करती है उनकी समस्याओं को हल करने की कोशिश करती है। इसी तरह इस उपन्यास की महिला पग-पग संघर्षों करते नजर आती है।

रूबी दी का बाल्यकाल राजसी ठाट-बाट और वैभवपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ। उनका विवाह मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखने वाले इंजीनियर सुधीर गुप्ता के साथ संपन्न होता है। ससुराल में उन्हें 'सातपीढ़िया शाह की लड़की' कहकर संबोधित किया जाता है, जिससे उनके पारिवारिक वैभव और आर्थिक पृष्ठभूमि का व्यंग्यात्मक बोध होता है। विवाहोपरांत उनका जीवन अनेक प्रकार की उपेक्षाओं और मानसिक यातनाओं से घिर जाता है। विशेषतः दोनों पुत्रियों के जन्म के समय उन्हें आवश्यक देखभाल, यहाँ तक कि पर्याप्त आहार (दूध) भी उपलब्ध नहीं कराया जाता, जो पितृसत्तात्मक मानसिकता और पुत्र-प्राथमिकता की प्रवृत्ति को उद्घाटित करता है।

जब रूबी दी अपने पति से इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार का कारण जानना चाहती हैं, तब उन्हें ज्ञात होता है कि उनके पति की जैविक माता उनके जन्म के दो माह पश्चात् दिवंगत हो गई थीं और उनका पालन-पोषण सौतेली माँ ने किया है। पति स्वयं को सौतेली माँ के 'अहसानों' से बंधा हुआ मानते हैं, जिसके कारण वे उनके विरुद्ध कोई प्रतिवाद करने में असमर्थ रहते हैं। इसी संदर्भ में वे रूबी दी के तथाकथित 'दोषों' का उल्लेख करते हैं—पहला, उनका शिक्षित होना और अन्य स्त्रियों से भिन्न व्यक्तित्व का होना; दूसरा, उनके पास स्वयं की आर्थिक स्वतंत्रता का होना। इस कथन से स्पष्ट होता है कि शिक्षित एवं



आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्री को पितृसत्तात्मक व्यवस्था में संदेह और असुविधा की दृष्टि से देखा जाता है।

रूबी दी के जीवन में 'दोष' का यह आरोप पहली बार नहीं आता। पंद्रह वर्ष की आयु में उनके देवीदत्त मामा ने भी उन्हें यह कहकर दोषारोपित किया था कि वे धन की शक्ति में अत्यधिक विश्वास रखती हैं। यद्यपि यह आरोप वस्तुतः एक गलतफहमी पर आधारित था, तथापि इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री के व्यक्तित्व और उसकी आर्थिक चेतना को समाज प्रायः संशय की दृष्टि से देखता है।

देवीदत्त मामा का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में हुआ था। वे रूबी दी के पैतृक घर में निवास करते थे और उनके पिता के आर्थिक सहयोग से जर्मनी जाकर फोटोग्राफी का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। वैचारिक स्तर पर वे सुधारवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनका संपर्क तत्कालीन राष्ट्रीय और साहित्यिक हस्तियों—मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा प्रेमचंद—से रहा था। जनता दल की सरकार के गठन के पश्चात् उनका अचानक सार्वजनिक जीवन से लुप्त हो जाना उपन्यास में एक रहस्यमय संकेत के रूप में उपस्थित होता है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रसंग स्त्री-अस्मिता, पितृसत्तात्मक संरचना, आर्थिक स्वायत्तता तथा सामाजिक मानसिकताओं के अंतर्विरोधों को उद्घाटित करता है, जो उपन्यास की वैचारिक संरचना को गहनता प्रदान करते हैं।

उपन्यास में सायरा उर्फ सारा, कल्याणी हलदार, सविता, फरहा, आभा जैन तथा माया बोस जैसी स्त्री-पात्र अपनी-अपनी जीवनानुभूतियों और अंतर्व्यथाओं को रूबी दी के समक्ष व्यक्त करती हैं। ये सभी पात्र भिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से संबद्ध होते हुए भी एक साझा स्त्री-अनुभव से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। रूबी दी उनके लिए केवल श्रोता नहीं, बल्कि एक संवेदनशील संवाद-स्थल के रूप में

उपस्थित होती हैं, जहाँ वे अपने दांपत्य-संघर्ष, सामाजिक उपेक्षा, मानसिक आघात तथा अस्तित्वगत प्रश्नों को निर्भीकतापूर्वक उद्घाटित करती हैं।

इन स्त्रियों की कथाएँ इस तथ्य को रेखांकित करती हैं कि पितृसत्तात्मक संरचना में स्त्री की पीड़ा निजी न होकर सामूहिक अनुभव का रूप धारण कर लेती है। अतः रूबी दी का व्यक्तित्व एक ऐसे केंद्र के रूप में उभरता है, जहाँ विविध स्त्री-अनुभव एकत्र होकर व्यापक स्त्री-विमर्श की दिशा में संकेत करते हैं।

कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए , उपन्यास में विस्थापन की समस्या केवल भौगोलिक स्थानांतरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर गहरे आघात का चित्रण करती है। उपन्यास का नायक कुलभूषण, जो कुष्ठिया से कोलकाता विस्थापित होकर आता है, शरणार्थी जीवन की पीड़ा, असुरक्षा और पहचान-संकट का प्रतिनिधि पात्र बन जाता है।

देश के विभाजन और राजनीतिक सीमाओं के बदलने के कारण लाखों लोगों की तरह कुलभूषण का परिवार भी अपनी जन्मभूमि छोड़ने को विवश होता है। कुष्ठिया से कोलकाता तक का सफर केवल स्थान परिवर्तन नहीं, बल्कि अपनी जड़ों, स्मृतियों और सामाजिक प्रतिष्ठा से अलग हो जाने का दर्द है।

विस्थापन के बाद व्यक्ति अपने घर, खेत, पड़ोस और सांस्कृतिक परिवेश से कट जाता है। यह कटाव उसे भीतर से रिक्त कर देता है। कुलभूषण के जीवन में यह रिक्तता निरंतर बनी रहती है—वह नई जगह पर रहते हुए भी 'अपना' नहीं बन पाता। विस्थापन व्यक्ति की पहचान को भी संकट में डाल देता है। कुलभूषण पहले से ही अपने भाइयों से अलग, कुरूप और



उपेक्षित था; विस्थापन ने उसके अस्तित्व को और अधिक अस्थिर बना दिया।

नई जगह पर वह केवल एक 'शरणार्थी' के रूप में देखा जाता है। उसकी व्यक्तिगत पहचान, उसका आत्मसम्मान और उसकी पूर्व सामाजिक स्थिति समाप्त हो जाती है। उपन्यास इस प्रश्न को उठाता है कि क्या केवल स्थान बदलने से व्यक्ति की पहचान भी बदल जाती है? कुलभूषण का संघर्ष इसी पहचान को पुनः स्थापित करने का प्रयास है।

विस्थापित लोगों को समाज में अक्सर दया, संदेह या तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। कुलभूषण का कुरूप होना और भाइयों से अलग होना उसकी सामाजिक स्थिति को और भी जटिल बना देता है।

उपन्यास यह दर्शाता है कि विस्थापन केवल आर्थिक संकट नहीं लाता, बल्कि सामाजिक संबंधों में भी दरार डाल देता है। लोग विस्थापितों को बोझ या बाहरी समझते हैं, जिससे उनमें हीनता-बोध और अलगाव की भावना जन्म लेती है।

देश की भौगोलिक और राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तन—विशेषतः विभाजन—ने असंख्य परिवारों को विस्थापित किया। उपन्यास इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में व्यक्तिगत कथा को रखकर सामूहिक त्रासदी को अभिव्यक्त करता है।

यह विस्थापन केवल एक व्यक्ति या परिवार की समस्या नहीं, बल्कि पूरे समाज की ऐतिहासिक विडंबना है, जिसने पीढ़ियों तक असर डाला। कुलभूषण का जीवन उस पीढ़ी की स्मृति और दर्द का प्रतीक है, जिसे अपनी मिट्टी से उखाड़ दिया गया।

विस्थापन व्यक्ति के मन में असुरक्षा, भय और अस्थिरता की भावना पैदा करता है। कुलभूषण अपने अतीत की स्मृतियों और वर्तमान की कठोर वास्तविकता के बीच

झूलता रहता है। वह न पूरी तरह अतीत में लौट सकता है, न वर्तमान में पूरी तरह रच-बस पाता है। यही द्वंद्व उसे भीतर से तोड़ता है। उपन्यास इस मानसिक विघटन को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है।

उपन्यास के नायक कुलभूषण जैन की जिंदगी के माध्यम से पूर्वी बंगाल की आजादी के साथ आरंभ हुए विस्थापन और शरणार्थियों के निर्वासन की कहानी का मार्मिक ढंग से चित्रण हुआ है। कुलभूषण जैन बांग्लादेश के कुश्ती जिले के एक मारवाड़ी व्यापारी परिवार का लड़का है। उसके तीन भाई और एक बहन हैं। कुलभूषण की बहन की एक बड़े धनी व्यापारी में व्यापारी परिवार में शादी हो चुकी है। उसके सभी भाई कोलकाता में निवास करते हैं लेकिन कुलभूषण कई वर्षों तक अपने माता-पिता के साथ कुष्टिया में रहता है। जब वह सब कुछ छोड़कर कोलकाता आता है तब वह अपने घर में शरणार्थी जैसा जीवन व्यतीत करता है। कुलभूषण अपने जीवन का एक लंबा समय गोपाल चंद्र दास बनकर गुजार देता है। लेकिन उसे यह डर होता है कि उसकी पहचान कहीं खो न जाए। कुलभूषण जी पत्रकार को अपनी कथा सुन रहा होता है उसके बारे में सोचता है कि यह पत्रकार बहुत चालाक किस्म का प्राणी है। उसने सारी बातें खुद खुद कर पूछ ली हैं कौन जाने उसकी क्या मंशा है कहता है कि वह रिफ्यूजीयो पर किताब लिख रहा है—यह बताने की उनकी जिंदगी या पिछले 50 साल से कहां से कहां पहुंची बोलता है कि भूषण बाबू आपकी जिंदगी यूनिक है क्योंकि आप सिर्फ कुल भूषण जैन ही नहीं हैं गोपाल चंद्र दास भी हैं।"4 फिर कहता है आदमी की पहचान उसे जन्म देने वाले मां पिता से होती है। जाने वह पत्रकार अपनी किताब में कौन सा नाम दर्ज करेगा। इसीलिए कुलभूषण बार-बार कहता है कि कुलभूषण जैन का नाम ही दर्ज कीजिएगा।



विश्लेषण का आधार भी हैं। अतः समकालीन हिंदी साहित्य में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष:

अध्ययन से स्पष्ट है कि अलका सरावगी के उपन्यास भारतीय समाज के संक्रमणकालीन यथार्थ का गहन चित्र प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक विघटन, आर्थिक विषमता, स्त्री-अस्मिता का संघर्ष, सांस्कृतिक संकट तथा मनोवैज्ञानिक असंतुलन उनके उपन्यासों में प्रमुख समस्याओं के रूप में उभरते हैं। उनकी रचनाएँ केवल कथा-साहित्य नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय

संदर्भ:

1. <https://www.ijcrt.org/papers/IJCRT251161>
2. कलिकथा : वाया बाइपास, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली
3. शेष कादंबरी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली
4. कुलभूषण नाम दर्ज कीजिए, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली